संविधान एवं संविधानवाद : एक विवेचन

जय श्री
शोधार्थी (राजनीति विज्ञान)
ओ.पी.जे.एस. विश्वविद्यालय,
चुरू (राज.)

प्रत्येक देश के संवैधानिक कानून को 'संविधान' कहा जाता है तथा प्रत्येक देश में दो प्रकार के कानून होते हैं। साधारण कानून और संवैधानिक कानून, इनमें सामान्यतया संवैधानिक कानून को सामान्य कानून की तुलना में उच्च स्थिति प्राप्त होती है। शासन और शासक वर्ग को सामान्यतया साधारण कानून और कुछ सीमा तक संवैधानिक कानून से शक्तियाँ प्राप्त होती है। उल्लेख करना समीचीन होगा कि शासन और शासक वर्ग पर नियंत्रण की आवश्यकता प्राचीन काल से ही अनुभव की जाती रही है। प्राचीन काल में इस प्रकार के नियंत्रण नैतिक धारणाओं, धार्मिक उपदेशों और औचित्य– अनौचित्य की सामान्य धारणाओं के रूप में थे लेकिन इतिहास बताता है कि उपर्युक्त प्रकार के नियंत्रणों कि प्रभावशीलता स्वयं शासक–वर्ग की इच्छा पर निर्भर करती है और जब कभी विद्यमान शासक वर्ग की सत्ता के लिए चुनौती उत्पन्न हो, शासक वर्ग औचित्य की धारणाओं की मनमानी व्याख्या करते हुए सत्ता पर निहित नियन्त्रणों की अवहेलना और उल्लंघन का मार्ग अपना लेता है तब यह आवश्यक हो जाता है कि शासक वर्ग की शक्तियों पर प्रभावी कानूनी नियंत्रण होने चाहिए।

आधुनिक राजनीतिक चिन्तन में इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई है कि शासन और शासक वर्ग पर नियंत्रण की व्यवस्था स्वयं उस देश के संविधान में ही होनी चाहिए और नियंत्रणों की यह व्यवस्था एक प्रकार से संस्थागत होनी चाहिए, जिससे उसकी अवहेलना अपेक्षाकृत कठिन कार्य बन जाए। संविधान एवं संविधानवाद का अध्ययन करें तो कहा जा सकता है कि शासन और शासक वर्ग पर नियंत्रण की संविधान द्वारा स्थापित की गई संस्थागत व्यवस्था ही 'संविधानवाद' है। **विलियम जी. एण्ड्रयूज** के शब्दों में "संविधानवाद का आशय है सीमित शासन–संविधानवाद के अन्तर्गत सरकार पर दो प्रकार की सीमाएँ लगाई जाती हैं। कुछ बातों के सम्बन्ध में शासन शक्ति के प्रयोग का निषेध किया जाता है और अन्य बातों के सम्बन्ध में शक्ति के प्रयोग की प्रक्रिया निश्चित की जाती है। इस प्रकार संविधानवाद के दो पहलू स्वतंत्रता सम्बन्धी और प्रक्रिया सम्बन्धी है।[1]

वस्तुत: संविधानवाद शासन और नागरिकों के सम्बन्धों को ऐसे ढंग से निर्धारित करता है कि शासन सत्ता तथा नागरिकों के लिए कहीं आतंक का विषय नहीं बन जाए। संविधानवाद केवल उसी राजनीतिक व्यवस्था में सम्भव है, जहाँ संविधान हो और इस संविधान द्वारा राजनीतिक शक्ति के उपयोगकर्त्ताओं की न केवल भूमिका निर्धारित की जाए, अपितु इस भूमिका की व्यावहारिकता की व्यवस्था भी की जाए। अभिप्राय यह है कि सरकार संविधान की व्यवस्था के अनुरूप ही संचालित हो और इसे व्यवहार में सम्भव बनाने के लिए संवैधानिक नियन्त्रणों व प्रतिबन्धों की प्रभावशाली व्यवस्था हो। अर्थात् सामान्य शब्दों में संविधानवाद का आशय है– सीमित शक्तियों वाला शासन।

यह कहा जा सकता है कि संविधानवाद आज के राजनीतिक चिन्तन की एक प्रमुख धारणा और प्रेरणा है तथा इसी कारण लगभग सभी आधुनिक राजनीतिक चिन्तकों यथा **पिनॉक और स्मिथ, जे.एस.राऊसैक, ब्लोण्डेल, के.सी. ह्वीयर** आदि ने संविधानवाद को व्यापक अर्थों में परिभाषित किया है। अतएव उनके विचार संक्षेपत: द्रष्टव्य है–

पिनॉक और स्मिथ के अनुसार– "संविधानवाद केवल प्रक्रिया और तथ्य का नाम ही नहीं है, वरन् यह राजनीतिक शक्ति के संगठनों का प्रभावशाली नियंत्रण भी है। एवं प्रतिनिधित्व प्राचीन परम्पराओं तथा भविष्य की आशाओं का प्रतीक भी है।"

यहाँ यह उल्लेख करना भी समीचीन होगा कि राजनीतिक चिन्तन में संविधानवाद अरस्तू के समय से ही चला आ रहा है। इस बात को रेखांकित करते हुए राजनीतिक विचारक **सेबाइन** का कहना है– "अरस्तू के मत में संविधानवाद के तीन मुख्य तत्व हैं। प्रथम, यह शासन जनता के या सर्वसाधारण के हित में होता है, द्वितीय यह विधि–सम्मत शासन होता है और तृतीय यह इच्छुक प्रजाजनों का शासन है।

जे.एस.राऊसैक के अनुसार, "एक धारणा के रूप में संविधानवाद अनिवार्य रूप से सीमित सरकार और शासक तथा शासित के ऊपर नियंत्रण की एक व्यवस्था है।"

ब्लोण्डेल के अनुसार, "संवैधानिक शासन वह है जो कि विशेषतया उदारवादी हो, जो शासन की शक्तियों और उनके प्रयोग को प्रतिबन्धित करता हो और राज्य के नागरिकों को अधिकतम स्वतंत्रता प्रदान करता हो।"

के.सी. ह्वीयर ने संविधानवाद को और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "संविधानवादी शासन का अर्थ किसी संविधान के नियमों के अनुसार शासन चलाने से कुछ अधिक है। इसका अर्थ है, निरंकुश शासन के विपरीत नियमानुकूल शासन। ..... संविधानवाद की वास्तविक सार्थकता और उसकी पीछे मौलिक उद्देश्य यही है कि शासन की सीमाएँ बाँधी जा सकें और शासन चलाने वालो पर कानूनों तथा नियमों के मानने का बन्धन रहे।"[२]

अत: इस प्रकार कहा जा सकता है कि संविधानवाद की धारणा निश्चित रूप से बहुत अधिक व्यापक और ऊर्जावान धारणा है।

संविधानवाद की विशेषताओं का अध्ययन करें तो कहा जा सकता है कि संविधानवाद मूल्य सम्बद्ध अवधारणा है, जिसमें राष्ट्र के जीवन दर्शन होते हैं। यह उन मूल्यों, विश्वासों व राजनीतिक आदर्शों की ओर संकेत करता है जो राष्ट्र के हर नागरिक को प्रिय होते हैं तथा हर राष्ट्र का जीवन आधार होते हैं और यह संवैधानिक दर्शन राजनीतिक समाज को अभिजनों द्वारा प्रदान किया जाता है।

संविधानवाद को संस्कृति सम्बद्ध अवधारणा के रूप में देखें तो यह कहना उपयुक्त होगा कि संविधानवाद की धारणा हर जगह उस स्थान अथवा देश विशेष की संस्कृति से सम्बद्ध पायी जाती है और हर देश के आदर्श, मूल्य व विचारधाराएं भी उस देश की संस्कृति की ही उपज होते हैं।

यह कहना भी बिल्कुल सटीक होगा कि संविधानवाद एक गत्यात्मक अवधारणा है, जिसमें निरन्तर गति बनी रहती है क्योंकि गतिशील प्रकृति के कारण ही समय परिवर्तन के साथ मूल्यों में भी परिवर्तन आता रहता है तथा संस्कृति का विकास होता है। संविधानवाद मूलत: संविधान पर आधारित अवधारणा है जो कि साध्य के लक्ष्यों का सूचक है। दूसरे शब्दों में संविधानवाद को साध्य प्रधान अवधारणा भी कहा जा सकता है अर्थात् इसका अर्थ उन आदर्शों अथवा नैतिक मूल्यों से है जिन्हें समाज साध्य के रूप में स्वीकार करता है। संविधानवाद जैसाकि वर्णित किया गया संविधान पर ही आधारित होता है और संविधान ही संविधानवाद की अभिव्यक्ति करता है। एतदर्थ प्रमुख राजनीतिक विचारक **सी.एफ.स्ट्रांग** और **कौरी** तथा **अब्राहम** के कथन द्रष्टव्य है–

सी.एफ.स्ट्रांग के अनुसार, "संविधान उन सिद्धान्तों का समूह है, जिसके अनुसार राज्य के अधिकारों, नागरिकों के अधिकारों और दोनों के सम्बन्धों में सामंजस्य स्थापित किया जाता है।"[३]

कौरी तथा **अब्राहम** का कहना है कि "स्थापित संविधान के निर्देशों के अनुरूप शासन को संविधानवाद माना जाता है।"

प्रमुख राजनीतिक चिन्तकों की परिभाषाएं एवं उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संविधान और संविधानवाद सभी परिस्थितियों में एक नहीं होते उनमें कुछ बुनियादी अन्तर होते हैं, जिनका उल्लेख निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

१.प्रकृति की दृष्टि से भी दोनों में अंतर किया जा सकता है। संविधानवाद में लक्ष्यों और उद्देश्यों की प्रमुखता होती है, जबकि संविधान में साधनों की सुव्यवस्था को प्रधानता दी गई है। स्पष्ट है कि संविधान रूपी साधन के माध्यम से ही संविधानवाद के लक्ष्यों को प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है।

२. परिभाषा के दृष्टिकोण से देखें तो संविधान एक संगठन का प्रतीक है जबकि संविधानवाद एक विचारधारा का प्रतीक है। संविधान में किसी राष्ट्र के मूल्य, विश्वास

और आदर्श निहित रहते हैं, जबकि संविधानवाद उन सिद्धान्तों का एक समूह कहा जा सकता है जिनके आधार पर शासन शक्तियों और शासकों के अधिकारों तथा उनकी सीमाओं का निर्धारण करता है।

३. संविधान और संविधानवाद में सबसे अधिक प्रमुख अंतर क्षेत्र की दृष्टि से है और जैसा कि ऊपर वर्णित किया गया संविधान की तुलना में संविधानवाद बहुत व्यापक है। संविधानवाद एक अन्तर्भूतकारी (प्दबसनेपअम) धारणा है, लेकिन संविधान एक अपवर्जक (म्गबसनेपअम) धारणा है।

४. उत्पत्ति के दृष्टिकोण से विवेचना करें तो जहाँ संविधानवाद सदैव और आवश्यक रूप से विकास का प्रतिफल होता है वहाँ वर्तमान समय में संविधान सामान्यतया निर्मित होते हैं जो औपचारिक संशोधनों तथा देश की परम्पराओं के विकास के आधार पर अपने आप को बदलती हुई परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं के अनुरूप ढालते रहते हैं।

५. संविधान और संविधानवाद में औचित्य के आधार पर भी विभेद किया जा सकता है। औचित्य के दृष्टिकोण से देखें तो जहाँ संविधानवाद में आदर्शो के औचित्य (स्महपजपउंबल) का प्रतिपादन मुख्यतया विचारधारा के आधार पर होता है, जबकि संविधान का औचित्य मुख्यतया विधि या कानून के आधार पर ठहराया जाता है।

निष्कर्षत: एक देश के मूलभूत नियमों और कानूनों के संग्रह को संविधान कहा जाता है, लेकिन संविधानवाद नियमों और कानूनों को संग्रह मात्र ही नहीं होता अपितु उसमें राजनीतिक जीवन के मूल्य, विश्वास, संस्कृति तथा राजनीतिक आदर्श आदि सभी कुछ संविधानवाद में समाहित रहते हैं। अत: कहना उपयुक्त होगा कि संविधानवाद निश्चित रूप से संविधान से कुछ अधिक है।

विवेच्य विषय में यह बताया जाना भी उपयुक्त होगा कि प्रत्येक देश का अपना एक अलग संविधान होता है, जिसे अन्य संविधानों से कुछ विशिष्टता प्राप्त होती है, लेकिन प्रत्येक देश का अपना एक अलग मौलिक संविधानवाद नहीं होता। अवधारणात्मक दृष्टिकोण से देखा जाए तो संविधानवाद की दो–तीन अवधारणाएँ कही जा सकती है, यथा– पाश्चात्य संविधानवाद, विकासशील देशों का संविधानवाद तथा साम्यवादी संविधानवाद। वर्तमान में यह पूर्णत: स्पष्ट हो गया है कि संविधानवाद की इन अवधारणाओं में पाश्चात्य संविधानवाद या उदारवादी संविधानवाद ही वस्तुत: संविधानवाद की मूल अवधारणा है।

उपरोक्त विषय में यह बताया जाना भी उपयुक्त होगा कि संविधानवाद की एक अवधारणा से सम्बन्धित विभिन्न देशों के संविधानवाद में एक मूलभूत समानता पाई जाती है लेकिन संविधान विशिष्ट, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियों का परिणाम होता है, अत: प्रत्येक देश के संविधान की अपनी विशिष्टता होती है।

सारांशत: और निष्कर्षत: संविधान और संविधानवाद के विषय में उपर्युक्त विभेदों के बावजूद भी संविधान और संविधानवाद एक–दूसरे के सहायक तथा पूरक हैं। संविधान संविधानवाद का मूल आधार है और संविधान के बिना संविधानवाद की कल्पना नहीं की जा सकती। यह भी सत्य है कि संविधान का लक्ष्य संविधानवाद ही होना चाहिए तभी तो संविधान की कोई सार्थकता है।

सन्दर्भ

1.W.G. Andrews, Constitutions and constitutionalism, p. 12
2.K.C. Wheare, Modern Constititions, p. 137
3.A Corry and Henry J. Abraham : Elements of Democratic Government, p. 53